शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 अगस्त 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

समकालीन कविता के विविध आयाम

प्रणव शर्मा
हेमचन्द्र यादव विश्वविद्यालय
दुर्ग, छत्तीसगढ़, भारत

शोध संक्षेप

साठवें दशक के आगमन के साथ ही विभिन्न काव्य आन्दोलन अस्तित्व में आने लगे थे। यह सभी काव्य आन्दोलन विभिन्न नामों के साथ सक्रीय तो रहे, लेकिन उनमें निहित भाव-बोध या विचारों में कोई बड़ी विविधता नहीं थी। समय के साथ यह काव्य आंदोलन अपनी अर्थवत्ता खोने लगे। भारत की आजादी के वर्षों बाद देश की परिस्थिति में परिवर्तन होने के साथ जीवन मूल्यों में भी परिवर्तन आ गए थे। इसी परिवर्तन की कड़ी में समकालीन कविता नयी पीढ़ी के नये विचारों, भावों और संवेदनाओं को लेकर विकसित होने लगी। बदलते समय और परिस्थितियों के साथ समकालीन कविता में विषयों का आयाम व्यापक होता रहा। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से समकालीन कविता में निहित विभिन्न विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द : आन्दोलन, अस्थिरता, सामंतवादी, पितृसत्तात्मक, आदिवासी अस्मिता, नक्सलबाड़ी।

समकालीन कविता

समकालीन कविता का आगमन हुआ तब तक नयी कविता के मुहावरे विचार और भाव बोध पुराने हो चुके थे। दुनिया के बदलते सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य से दूर नयी कविता पुरानी होने लगी थी। ऐसे में समकालीन कविता ने बदले हुए परिदृश्य में आम आदमी के साधारण और वास्तविक अनुभवों को काव्य में जगह दी। नयी कविता का समय भारत की स्वतंत्रता और दूसरे विश्वयुद्ध के बहुत बाद का समय था। स्वतंत्र होने के बाद देश प्रगति की राह में उस तरह नहीं बढ़ रहा था जैसी उम्मीद की गई थी। सन् 1964 में भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु हुई। उनकी मृत्यु के बाद लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने। उन्होंने देश की स्थिति को सुधारने का अथक प्रयास किया। लेकिन सन् 1966 में वे भी असमय मृत्यु को प्राप्त हुए। देश में सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक अस्थिरता चल रही थी। समस्याओं से जूझता आदमी आंदोलनों पर उतर आया था। इस समय राममनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण जैसे कई नेता सत्ता के विपक्ष से आम आदमी को उसका हक दिलाने के लिए आगे आये। सन् 1967 में सत्ता, शासन और सामंतवादी प्रभावों के विरोध में विभिन्न आंदोलनों के साथ ही नक्सलबाड़ी के विद्रोह का भी प्रारम्भ हुआ।

आगे तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने सन् 1975 से सन् 1977 तक देश में आपातकाल लगाया। कुछ आलोचकों ने इस समय को ही समकालीन कविता का वास्तविक समय बताया है। सन् 1980 से सन् 1990 तक के दौर को समकालीन कविता का निर्णायक कालखंड कहा गया। सन् 1984 में आपरेशन ब्लूस्टार की प्रतिक्रिया स्वरूप इंदिरा गांधी की हत्या हुई। इसके बाद देश बहुत से राजनीतिक दांवपेंच दल-

बदल, दक्षिण भारत के राजनीतिक संघर्ष जैसी घटनाओं से गुज़रा।

देश में प्रत्येक स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार, विभिन्न घोटाले, प्राकृतिक आपदा जैसी स्थितियों के कारण देश में आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से और भी उथल-पुथल हुए। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विभिन्न देश बड़े परिवर्तनों से गुज़र रहे थे। नब्बे के दशक में ही यूरोपीय देशों की राजनीतिक स्थिति में बहुत से परिवर्तन हुए। साम्यवाद का प्रतीक माने जाने वाले सोवियत संघ का विघटन हुआ। उसके पतन का लाभ उठाते हुए अमेरिका जैसे देश अपना वर्चस्व स्थापित करने लगे। बाजारवाद, तकनीकीकरण और भूमंडलीयकरण का प्रसार होने लगा।

समकालीन कविता के विविध आयाम

समकालीन कविता आम आदमी के अंदर और बाहर के अच्छे.बुरे सभी विकारों, विकृतियों, नैतिक-अनैतिक निर्णयों से उत्पन्न खीझ से निकली थी। समकालीन कवि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की विसंगतियों, अन्याय, शोषण और भेदभाव पर प्रहार किया। समकालीन कविता आधुनिक भारत के सामाजिक और राजनीतिक विकास की श्रृंखला के महत्वपूर्ण बिंदुओं में रही। समकालीन कवि ने निर्भयता से उस सामाजिक व्यवस्था पर सवाल उठाया जो आम आदमी के विरूद्ध कार्य करती है। मोहभंग की चरम सीमा में समकालीन कवियों ने अपनी कविता में विद्रोह और विरोध का खुला रुख अपनाया।

समकालीनता का अर्थ किसी काल विशेष से ही न होकर व्यापकता लिए हुए है। यदि किसी काल विशेष की बात करें तो कई पुराने रचनाकार भी समकालीन कविता में आते हैं। जिन्होंने किसी न किसी समय में सामाजिक, राजनीतिक या सांस्कृतिक विषमताओं के बारे में लिखा या उनके विरोध में आवाज उठाई। समकालीन कविता में नयी और पुरानी दोनों पीढ़ी के कवि एक साथ खड़े हैं। आलोचक मैनेजर पाण्डेय के अनुसार "केवल नया ही समकालीन नहीं होता, बल्कि जो सार्थक है वही समकालीन है, चाहे वह पुराना ही क्यों न हो।"**1**

समकालीन कविता के समय देश की परिस्थितियां ही ऐसी बनीं कि यथार्थ का प्रभाव साहित्य में बढ़ता गया। आज जब आदमी के जीवन की सभी दिशाओं में संघर्ष व्याप्त है। उसके आंतरिक द्वंद्व तो उसे रह-रहकर तोड़ते हैं, साथ ही आंतरिक द्वंद्वों से व्याकुल जब वह बाह्य जगत से सामना करता है तो बाह्य विषम परिस्थितियों का जाल उसके सामने बिछा हुआ मिलता है। ऐसी परिस्थितियां जहां दो समय के खाने के लिए मारामारी है। मंहगाई, गरीबी और बेरोजगारी जैसी समस्याओं ने उसे हताश कर रखा है।

वह जीवन के दुष्चक्रों में ऐसा पिस रहा है कि उसका जीना एक मजबूरी हो गई है। उसकी स्थिति जेल में बंद कैदी के समान हो गयी। ऐसा कैदी जिसे अपने जुर्म का भी पता नहीं है। वह ऐसी कैद में है जिससे चाहकर भी नहीं निकल पा रहा है। केदारनाथ अग्रवाल की कविता समकालीन युग के आदमी का स्पष्ट चित्रण करते हुए कहती है :

"कैद है आदमी का सूरज
आदमी की कोठरी में
आदमी के साथ न देश-बोध
होता है जहाँ न काल बोध
न कर्म-बोध होता है
जहाँ न सृष्टि-बोध
न आदमी रहता है जहाँ आदमी

न सूरज रहता है जहाँ सूरज"**2**

भारत में गरीबी, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, आतंकवाद जैसी समस्याएं और भी बढ़ती गई। कुछ उपलब्धियों के अलावा कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ। राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था का नैतिक पतन सामने था। नेताओं द्वारा किए गए घोटालों और भ्रष्टाचार के कारण आम आदमी का लोकतंत्र से विश्वास उठने लगा। समकालीन कवियों ने व्यवस्था से विद्रोह और अस्वीकार को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया। समकालीन कवि सत्ताधारियों के विपक्ष में खड़े होने से नहीं झिझका। उन्होंने अपने शब्दों में जनता की खराब स्थिति और सरकार के उनके प्रति दोषपूर्ण रवैये को व्यंग्यए निषेध और विरोध भरे स्वर दिए।

समकालीन कविता में विद्रोह के स्वर सन् 1967 के नक्सल विद्रोह के समय और भी अधिक प्रभावी हो गए थे। प्रारम्भ के विद्रोह जो गरीबी, भुखमरी, किसानों की मौत, सामाजिक कुरीतियों, भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था से अविश्वास से उपजे थे, वह सभी समकालीन कविता का विषय बने। जब शोषित और पीड़ित लोगों के लिए लड़ने वालों की संख्या जो बहुत कम रही, उन पर भी प्रतिबंध लगा दिए गए। आम आदमी के हक के लिए लड़ने वालों को जेल में डालने की नौबत आ गई। सत्ता के विपक्ष में कुछ बोलना भी नक्सल का पर्याय बन गया। इस विडंबना को समकालीन कवि शब्द देते लिखता है :

"आँख बन्द हो सकती है
जुबान हकला सकती है
कविता अनुलोम-विलोम
कर सकती है मगर पेट
किसी का गुलाम नही
वह जता रहा है कि
हर भूखा आदमी
नक्सलवादी है।"**3**

समकालीन कविता ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर भी उंगली उठाई है। ऐसी व्यवस्था जिसमें स्त्रियों की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई। जहां पुरुष को स्त्री से ज्यादा महत्ता दे दी गई। आधुनिक बनते जा रहे समाज में भी स्त्रियां रूढ़िगत परम्पराओं में बंधकर रह गई। उनका शोषण कम होने की जगह और भी बढ़ता गया। गांव हो या शहर सभी जगह महिलाएं उत्पीड़न की शिकार हुईं। समाज में उनका स्थान केवल घर के अंदर ही सीमित मान लिया गया था। समकालीन कवि ने स्त्री की ऐसी स्थिति के बार में लिखा है :

"वह औरत आकाश और पृथ्वी के बीच
कब से कपड़े पछीट रही है
पछीट रही है शताब्दियों से
धूप के तार पर सुखा रही है
...एक औरत का धड़
भीड़ में भटक रहा है
उसके हाथ अपना चेहरा ढूँढ रहे हैं
उसके पाँव जाने कब से
सबसे अपना पता पूछ रहे हैं।"**4**

समय के साथ ही समकालीन हिंदी कविता में स्त्री की स्थिति में परिवर्तन का स्वर पहले की अपेक्षा अधिक दृढ़ता से आने लगा। स्त्री की पीड़ा और आकांक्षाओं दोनों को समकालीन कवियों ने चित्रित किया है। समकालीन कवि ने स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को बढ़ावा दिया है। आज जहां स्त्री शोषण और उपेक्षा की शिकार है, वहीं वह अपने अधिकारों को पाने के लिए संघर्ष करती भी देखी जा सकती है। आज का पुरूष समाज भी इस सच्चाई को समझने लगा है कि दोनों का साथ होना समाज को प्रगतिशील बनाता है।

समकालीन कवियों ने आदिवासियों की दुर्दशा पर भी अपने विचार व्यक्त किए हैं। आधुनिक युग में एक सबसे बड़ा प्रश्न आदिवासियों की अस्मिता का रहा है। प्रारम्भ से ही आदिवासियों का इतिहास संघर्ष भरा रहा। भारत की आजादी के बाद भी उनकी स्थिति में कोई पड़ा परिवर्तन नहीं हुआ। आदिवासियों के लिए उनके जंगल, जल, ज़मीन ही उनकी पूंजी रही है। लेकिन आजादी के बाद औद्योगीकरण के चलते विकास के नाम पर जल, जंगल और ज़मीन को जितना नुकसान हुआ है उतना किसी को नहीं। समकालीन कवि विजेंद्र आदिवासियों की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं :

"लूटते हैं आकर हमें व्यापारी ठेकेदार
बड़े-बड़े अफसर बिना अपराध
पकड़ ले जाती है पुलिस
हमको चाहे जब
बच्चे हमारे मरते हैं भूख से
रोग से कुपोषण से
खदेड़ा जाता है हमें बार-बार
जानवरों की तरह
अपनी ही धरती से"**5**

समकालीन कविता में दलित विमर्श एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। दलित कविता के माध्यम से हिंदी कविता में नए मुहावरों, अर्थों और बिम्बों का मिश्रण हुआ है। ऐसा वर्ग जो समाज में सदियों से शोषण और भेदभाव का शिकार होता रहा। गाँवों, शहरों और महानगरों आदि सभी जगह दलित वर्ग को समाज की मुख्य धारा से पृथक रखा गया। जहां जानवरों और पशु-पक्षियों के भी रहने की जगह है और उनका भी अच्छे से ख्याल रखा जाता है, वहीं दलित वर्ग अपनी ही ज़मीन को अपना नहीं कह सकता है। समकालीन कविता दलित वर्ग की ऐसी दयनीय स्थिति को बड़े मार्मिक ढंग से कहती है :

"यकीन मानिए इस आदमखोर गाँव में
मुझे डर लगता है बहुत डर लगता है
....अभी बस अभी महाजन आएगा
मेरी गाड़ी से भैंस
उधारी में खोल ले जाएगा
खुलकर खाँसने के अपराध में प्रधान
मुश्क बाँध मारेगा
लदवाएगा डकैती में
सीखचों के भीतर
उम्र भर सड़ाएगा।"**6**

समकालीन कविता का कथ्य, शिल्प, भाषा और भाव-बोध सभी कुछ बदला हुआ है। समकालीन कवियों की भाषा पुरानी साहित्यिक हिंदी जैसी नहीं रही है। भाषा का अभिजात्य समकालीन कविता में लगभग खत्म ही हो गया है। समकालीन कविताओं में गली-मोहल्लों की बोलचाल वाली भाषा की अधिकता है। जिन रोजमर्रा के शब्दोंए मुहावरों और कथनों आदि को पहले के कवियों ने देखा तक नहीं वह समकालीन कविता में महत्व पा गए हैं। जिन विषयों पर पुराने कवियों ने टिप्पणी भी करने की नहीं सोची वह विषय समकालीन कविता में आकर उसे नया बना गए हैं। समकालीन कवियों ने औसत भारतीय जीवन का चित्रण किया है। ऐसा जीवन जहां भारतीय समाज पनपता और विकसित होता है :

"हम यहीं रहते हैं
कई गलियों नालियों के बीच
हम रहते हैं इसी घर में
इन पर कई बरसों के टंगे हैं कैलेण्डर
छठ की पूजा के लाल आरते
दरवाजे के मुंह पर सटे हैं

और अंधेरा धीरे-धीरे
चढ़ रहा है दीवारों पर।"7

निष्कर्ष

समकालीन कविता में विषयों की व्यापकता है। समकालीन कवि साधारण घटनाएंए साधारण प्रसंग थोड़े संवादों के उपयोग से अपनी बात सीधे-सीधे कहने में समर्थ है। समकालीन कविता में अन्याय और अत्याचार के प्रति विरोध, विद्रोह और अस्वीकार के स्वर हैं तो उसमें समाज के हर आदमी के प्रति सहानुभूति, दया और ममत्व का भाव भी विद्यमान है। कह सकते हैं कि समकालीन कविता को साधारण कथ्यों से अधिक लगाव है, असाधारण कथ्यों से नहीं। यह कविता शोषितों, गरीबों, बेरोजगारों, शारीरिक रूप से अक्षम लोगों के साथ खड़ी होने के साथ ही उनका भी साथ देती है, जो लोग समाज में परिवर्तन लाने के लिए प्रयासरत हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 पाण्डेय मैनेजर, अनभै साँचा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 2

2 अग्रवाल केदारनाथ, खुली आँखे खुले डैने साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृष्ठ 24

3 धन्वा आलोक, दुनिया रोज बनती है राजकमल प्रकाशन, 2006, न्यू दिल्ली, पृष्ठ 27

4 देवताले चंद्रकांत, लकड़बग्घा हंस रहा है, वाणी प्रकाश, 2018, पृष्ठ 9

5 kavitakosh.org/kk/बिरसा_मुण्डा_/_विजेन्द्र

6 भारती कँवल, दलित निर्वाचित कविताएँ, साहित्य उपक्रम, फरीदाबाद, 2012 पृष्ठ 35-36

7 कमल अरुण, अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006, पृष्ठ 53